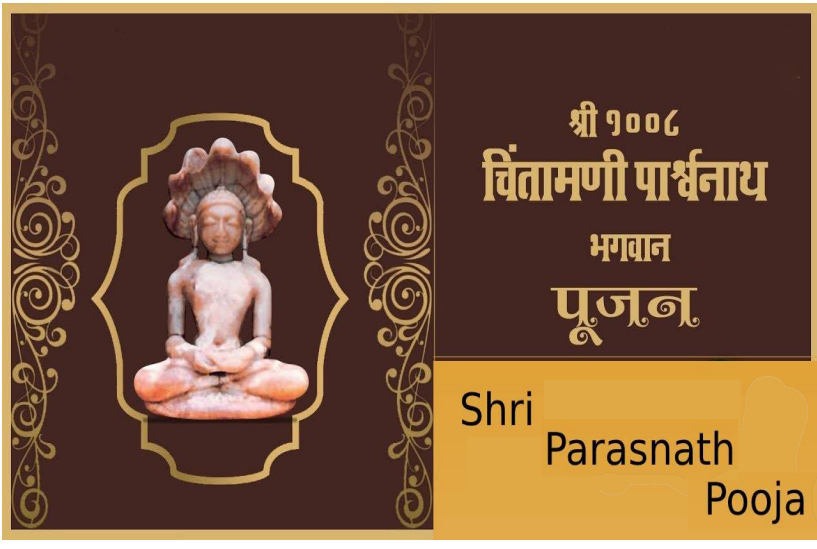

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा

(रचियता–आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

आदर्शों की गौरव गाथा, जग में जब गाई जायेगी।
उपसर्गजयी बामा सुत की, तब याद सहज ही आयेगी॥

जिनने समता को धारणकर, जग को समता पथ दिखलाया।
दसभव का बैरी कमठ स्वयं, अपनी करनी पर पछताया॥

चिंतामणि पारसनाथ तुम्हें, हिरदय में आज बिठाऊँगा।
अर्चन पूजन वन्दन करके, यह जीवन सफल बनाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

हे प्रभो! आपने जन्म जरा मृत्यु का क्षण में नाश किया।
आनन्दकन्द निज चेतन में, रमकर चैतन्य प्रकाश किया॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा॥
भोगों की आशा में अब तक, भवताप बढ़ाता आया हूँ।
मिट जाये भव संताप मेरा, भावों का चंदन लाया हूँ॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्व.स्वाहा।
इन्द्रादिक पद पाये लेकिन, अक्षय स्वातम पद न पाया।
है चाह मुझे अक्षय पद की, अक्षत का थाल सजा लाया॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्व. स्वाहा॥
है नाथ! स्वानुभव सुमनों से कामादिक भाव नशाने को।
आया हूँ द्वार तुम्हारे प्रभु, लाया हूँ पुष्प चढ़ाने को॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा॥
जब हुआ असाता मोह उदय, तब क्षुधा तृषा का जोर हुआ।
रसना को तृप्त किया लेकिन, पौरुष उतना कमजोर हुआ॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व.स्वाहा॥
मैं जगमग-जगमग ज्ञान ज्योति, अपने में नित्य रहा करता।
पर्यायों में प्रभु! मोह तिमिर मेरा धन हाय हरा करता॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व.स्वाहा॥
निश्चय तप की अग्नि में प्रभु! आठों कर्मों को दहकाया।
पाकर अनुपम चैतन्य सुरभि, तीनों लोकों को महकाया॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा॥
शुद्धोपयोग का सम्यक्फल, प्रभु तुमने ही चख पाया है।
नानाफल की इच्छाओं में हमने, दुःख ही दुःख पाया है॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा॥
जल चन्दन आठों द्रव्य लिये, आया अनर्घ्य पद पाने को।
गुण और गुणी का भेद प्रभो! आया हूँ आज मिटाने को॥
चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा॥

पंचकल्याणक अर्घ

चयकर प्राणत स्वर्ग से, बामा के उर आय।
दोज वदी वैशाख दिन, उत्सव गर्भ मनाय॥
ॐ ह्रीं वैशाख-कृष्णा-द्वितीयायां गर्भमंगल-मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
पौष कृष्ण एकादशी, जन्म लिया प्रभु आप।
तीन लोक संग नारकी, मिटा क्षणिक संताप॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय

अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जान लिया जब आपने, यह नश्वर संसार।
पौष कृष्ण एकादशी, पाया दीक्षा सार॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

किया आत्म अनुभूति में, चिदानन्द रसपान।
चैत्र चतुर्थी कृष्ण को, प्रगटा केवलज्ञान॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञान-प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, किया कर्म का नाश।
सम्मेदाचल से अचल मोक्षपुरी में वास॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय जय पारस, जय जय पारस, जय चिंतामणि पारस देवा।
सुर नर किन्नर गुण गाते हैं, करते नित चरणों की सेवा॥

जब आप बनारस जन्म लिया, माता बामा अति हरषाई।
धनपति ने रत्नों की वर्षा, छह माह पूर्व ही बरसाई॥

पन्द्रह मासों तक रत्नवृष्टि तीर्थंकर पुण्य महान कहा।
मेरूगिरि पर जन्माभिषेक क्षीरोदधि से स्नान अहा॥

इन्द्रादिक देवों ने मिलकर, प्रभु अतिशय मोद मनाया था।
पितु अश्वसेन घर नगरी में, शुभ आनन्द मंगल छाया था॥

जिस-जिस ने भी तुमको देखा, उनके सुख का कोई पार न था।
यौवन जब आया तब बचपन, जाने को भी तैयार न था॥

हे नाथ! आप सम्यक्त्व निधि अपने संग लेकर आये थे।

निश्चय व्यवहार अहिंसा के परिणाम सहज ही पाये थे॥
परद्रव्य हमें सुख देता है, ऐसा निश्चय श्रद्धान न था।
निज पर निज का अनुशासन था, निज बिन पर को स्थान न था।
जब मात-पिता ने निजघर में वधु लाने की मन में ठानी।
कह दिया लाऊँगा मुक्तिवधु, जो रही आज तक अनजानी॥
इक दिवस साथियों संग जाते, देखा निर्मल गंगा पानी।
मिल गया राह में इक तापस, कर रहा तपस्या मनमानी॥
बैठा पंचाग्नि तप करने, चहुँ ओर लकड़ियाँ जलती हैं।
गंगा-जमुना भी जल जायें, यों भीषण ताप उगलती हैं॥
लकड़ी की कोटर में बैठा, जल रहा नाग-नागिन जोड़ा।
हे पार्श्व! आपने जान लिया संबोधा तापस को थोड़ा॥
रे तापस! खोटा तप करके, क्यों इतना पाप कमाता है?।
जो ऐसा हिंसक तप करता, वह दुर्गति से दुःख पाता है॥
तापस बोला मेरा यह तप, हिंसक कैसे हो सकता है?।
तब कहा नाग-नागिन जोड़ा, अग्नि में अरे झुलसता है॥
फिर तापस बोला रे बालक!, क्यों झूठ यहाँ पर बोल रहा।
लक्कड़ जब चीरा अहि जोड़ा, देखा प्राणों को छोड़ रहा॥
हे पार्श्व! आपने णमोकार उनको तत्काल सुनाया था।
वे पद्मावति धरणेन्द्र हुये, नागेन्द्र भवन को पाया था॥
यह देख किन्तु मूरख तापस, अपना अपमान समझता है।
बदले की आग में जलकर के, संक्लेश भाव से मरता है॥
था तापस पूरब का भाई, पर वर्तमान में नाना था।
तुम करते रहे क्षमा लेकिन, इसका तो बैर पुराना था॥

प्रभु तुमको जब वैराग्य हुआ, आये लौकांतिक देव तभी।
ऐसी पर्याय हमें भी हो, अनुमोदन करने लगे सभी॥

निर्ग्रन्थ महामुनि होकर जब निज आत्मध्यान में लीन हुये।
हे स्वामिन्! कर्मों के बंधन स्वयमेव अरे निर्जीर्ण हुये॥

करके विहार प्रभु चार-माह, फिर सात दिवस का योग धरा।
जाता था शम्बर-देव कहीं, अटका विमान नीचे उतरा॥

हे नाथ! आपकी वीतराग मुद्रा को वह न लख पाया।
पूरब का बैरी जान तुम्हें, बैरी का बैर उमड़ आया॥

घनघोर वायु भीषण वर्षा, आवाज भयंकर करता था।
ओले शोले पत्थर पानी बरसाते मन न भरता था॥

धरती काँपी, अम्बर काँपा, धरणेन्द्रासन भी काँपा था।
उपसर्ग सात दिन किया किंतु, शत्रु का हृदय न काँपा था॥

इक ओर आत्मा की शक्ति, इक ओर क्रोध की ज्वाला थी।
प्रगटा प्रभु केवलज्ञान अरे, झुक गया कमठ मतवाला भी॥

कोई कहता यह होनी है, कोई कहता यह अनहोनी।
हे नाथ! अपेक्षायें सारी, हैं स्याद्वाद सम्मुख बौनी॥

व्यवहार और निश्चय से जो, वस्तुस्वरूप को जानेगा।
वस्तु का वह प्रतिपक्ष धर्म, सच्ची श्रद्धा से मानेगा॥

निश्चय स्वरूप में रहना ही, वस्तु की होनी कहलाती।
शुभ-अशुभ भाव वा उनका फल, अनहोनी है माँ बतलाती॥

होनी-हो चाहे अनहोनी, जो होना होकर रहता है।
होनी अनहोनी टालूँगा, यह कौन घमण्डी कहता है?॥

हे नाथ! द्रव्यगुण-पर्यय से अुण-अणु स्वतंत्र बतलाया है।
जिसको निश्चय श्रद्धान अहा! उसने मुक्ति पद पाया है॥

सम्मेदाचल से ज्यौं तुमने, निर्वाण महापद को पाया।
हमको भी पद निर्वाण मिले, मेरा भी मन प्रभु ललचाया॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ को भक्तिवश, करता कोटि प्रणाम।
है 'विमर्श' नित प्रति यही, मिले आत्म विश्राम॥

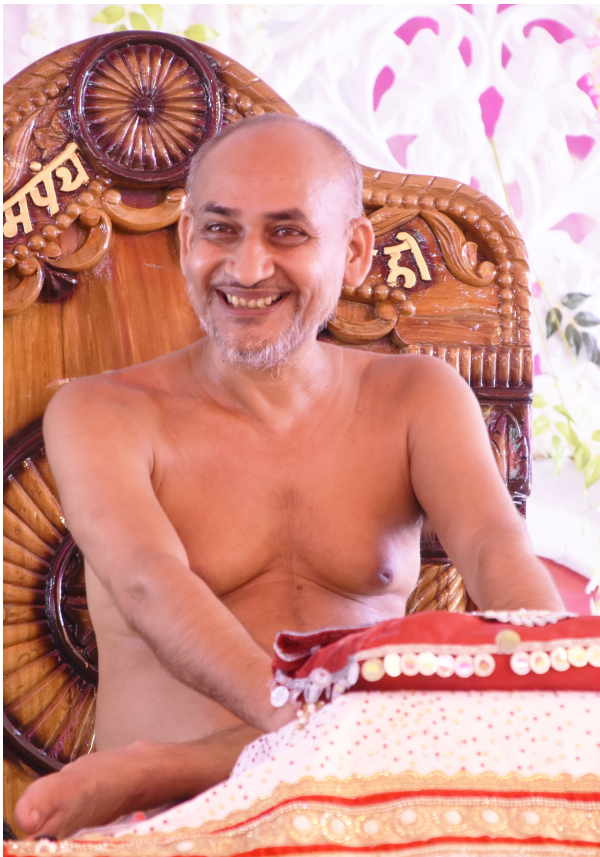

(परि पुष्पांजलिं क्षिपामि)